गंवई संवेदना की मोहक प्रस्तुति: 'अराजक उल्लास'

डॉ. अर्चना द्विवेदी

अस्सिटेंट प्रफेसर, हिन्दी विभाग (दिवा); सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज, कोलकाता

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय और पंडित विद्यानिवास मिश्र की व्यक्तिव्यंजक निबंध परंपरा को आगे बढ़ाने वाले आज के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंधकार के रूप में डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र स्थापित हो चुके हैं। लालित्य रस से सम्पृक्त डॉ. मिश्र के निबंध का गठन और उसकी शैली पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। ललित निबंध की विशेषताओं का परिचय देते हुए डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने स्वयं लिखा है-- ''गद्य की निहायत आत्मीय और रम्य विधा है व्यक्ति निबंध। यह 'व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज' है। इसकी उन्मुक्त प्रकृति में लालित्य का सहज उल्लास होता है। कदाचित् इसी विशिष्ट प्रकृति लक्षण के आधार पर इस विधा को ललित निबंध कहा जाने लगा है...बतरस की प्रकृति जैसी स्वच्छन्द प्रकृति होती है ललित निबंध की। ऊपर से अर्गलाविहीन मगर महीन अर्गला से शृंखलित और अनुशासित।''[1]

'अराजक उल्लास' मिश्र जी का एक ऐसा ही ललित निबंध संग्रह है। इसमें कुल चौबीस निबंध हैं। प्रत्येक निबंध अपनी विशिष्टता के साथ प्रकट होता है। अत: इस संग्रह के वैविध्य में वही आकर्षण है जो रंग बिरंगे फूलों से सजे गुलदस्ते में। इनके माध्यम से निबंधकार ने आज की विविध राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहलुओं पर बड़ी कुशलता से प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त इस संग्रह की खास विशेषता है उसकी गंवई संवेदना। ग्राम्य संस्कृति, पेड़-पौधे, मिट्टी की सोंधी गंध, लहलहाते खेत, श्रम रत ग्राम बालाओं का उन्मुक्त प्रकृति की गोद में निश्छल हास के प्रति आकर्षण और प्रेम उनके व्यक्तित्व में कूट कूट कर भरा है। इन संवेगों से उन्हें अलगाया नहीं जा सकता। यही कारण है कि सरल-सहज प्रकृति के धनी मिश्र जी का कोमल अन्त: कारण वर्तमान युग में चारों ओर फैली विसंगतियों और विद्रूपताओं के घटाटोप अंधकार से आहत है। बाज़ारवाद की भयावहता इतनी द्रुत गति पकड़ चुकी है कि इसके खूनी पंजे हमारी सहज कमनीय मानवीय संवेदनाओं की हत्या कर हमें मूल्यहीनता और संवेदनाहीनता के गर्त में धकेल रहे हैं। आज का मानव नीरसता से आक्रान्त और समाज से कटकर अपनों के बीच ही अजनबियों की तरह घुट-घुटकर जीने को मजबूर है। इस भयानक स्थिति से मिश्रजी का कोमल हृदय आहत है। शहर की भूल भुलैया और ऊपरी चमक दमक के खोखले आकर्षण से त्राण पाने के लिए ही उन्होंने अपने गाँव की सुखद यादों को जीने की चेष्टा की है। इससे उन्हें थोड़ा सुकून अवश्य मिल जाता है।

'साइयाँ के जाए न देबो बिदेसवा' शीर्षक गीत गाती हुई खेतों में श्रम रात ग्रामीण स्त्रियाँ जब अपने पतियों से गाँव छोड़कर शहर न जाने का आग्रह करती हैं तब मानो निबंधकार को ऐसा प्रतीत होता है कि यह वास्तव में गाँव की मिट्टी की ही अपने प्रवासी पुत्रों को वापस बुलाने की करूण टेर है। लेखक के लिए यह चिंता का विषय है कि शहर

की बनावटी चकाचौंध की हवा अब गाँवों के कमनीय परिवेश को भी दूषित कर रहा है। पूंजीवाद के लपटों में झुलसकर अब गाँव भी अपनी सहजता, शुभ्रता, प्रेम, एकता और भाईचारा जैसे मूल्यों से विलग हो रहा है।

'फगुआ की तलाश में' शीर्षक निबंध में निबंधकार ने आधुनिक जीवन शैली को अपनाने की होड़ में अपने संस्कारों एवं पारंपरिक त्योहारों---पर्वों के प्रति दम तोड़ते उत्साह पर खेद जताया है। उनमें इस बात को लेकर गहरा क्षोभ है कि तथाकथित 'माडर्न' बनने की चाहत में हम बिना सोचे-विचारे परायी चीज़ों को तो अंधा-धुंध अपनाते जा रहे हैं परन्तु वहीं दूसरी ओर अपनी जड़ों और संस्कृति से कटते जा रहे हैं। अत: ज़रुरी है कि हम फगुआ के अबीर-गुलाल के रंगों का उल्लास जिलाए रखें तभी हमारे, जीवन में भी उल्लास के कुछ क्षण बचे रह पाएंगे।

'मकान उठ रहे हैं' शीर्षक निबंध में भी शहरी हवा से आक्रांत होकर लुप्त होते ग्रामीण संस्कारों के प्रति चिन्ता व्यक्त की गई है। कभी ऐसा समय था जब मिट्टी के लिपे पुते घरौंदे गाँव की शोभा बढ़ाते थे। पर अब इनकी जगह पक्के ईंट के मकानों ने ले लिए हैं। लेखक के शब्दों में-- ''नए नए मकान जो उठ रहे हैं, उपकरण से प्रीति जिस मात्रा में प्रगाढ़ होती है, संवेदना उसी मात्रा में शिथिल होती है और निजी सुख की अनियंत्रित आकांक्षा से लोग पागल हो जाते हैं। यह विकास नहीं, विनाश का रास्ता है।''[2]

गाँव में फैली अशिक्षा का ही परिणाम है कि पक्के मकान अब झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा का पर्याय बन गए हैं। गाँव की संस्कृति जो दूसरे के सुख-दु:ख में भागीदार बनने की प्रेरणा देती है उसका धीरे धीरे लोप हो रहा है। भौतिक साधन संग्रह की होड़ हमें भाव शून्य कर रहे है। उपभोक्ता संस्कृति मानवीय गुणों को कुचल रही है। इसी भाव से अनुप्राणित अन्य उल्लेखनीय निबंधों में 'खोंइछा गमकत जाई', 'बनारस का रस मर रहा है', 'खाती दीपमालिका ठठाइत सूप है' तथा 'निर्गुन कौन देस को बासी' आदि प्रमुख हैं। 'आगंन की तलाश' भी टुटते बिखरते पारिवारिक रिश्तों की करूण गाथा को व्यक्त करती है।

इस तरह मिश्र जी एक ओर जहाँ सामाजिक विघटन से पीड़ित हैं वहीं राजनीतिक परिदृश्य में शोषण और भ्रष्टाचार के तांडव से भी व्यथित हैं। वर्तमान समय में राजनीति जिस तरह मतलब परस्ती, भाई-भतीजावाद, घूसखोरी, सत्तालोलुपता जैसे असाध्य रोगों से ग्रस्त है उससे हमारे देश की अग्रगति में बाधा उत्पन्न हो रही है। इस दृष्टि से 'बेहया का जंगल और नई नई घेरान' एक सशक्त निबंध है जिसके माध्यम से वर्तमान समय की राजनीतिक-सामाजिक विद्रूपताओं को प्रकट किया गया है।

यदि गाँव के प्रत्येक दरवाज़े के सामने बनायी गई घेरानों की वजह से रास्ते का अस्तित्व मिट गया है तो लेखक बड़ी कुशलतापूर्वक यह सिद्ध करता है कि भाषा, जाति, प्रदेश आदि अनावश्यक घेरानों में बंधकर आज मनुष्य स्वयं अपने स्वस्थ विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर रहा है। इन घेरानों का निर्माण मौका परस्त स्वार्थी राजनेता कर रहे हैं। इससे वे जनता को गुमराह करके अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंक रहे हैं।

इसी तर्ज़ पर 'धरती माता? धरती पुत्र! शीर्षक निबंध में भी राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट मानसिकता और सत्तालोलुपता की बखिया उधेड़ी गयी है। लेखक उस समय को याद करता है जब प्रेमचन्द-नन्ददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, विष्णुकान्त शास्त्री जैसे बड़े बड़े साहित्यिक मनीषी परस्पर मत वैभिन्य रखते हुए भी एक दूसरे की प्रतिभा का

सम्मान करते थे तथा आपसी सहिष्णुता का परिचय देते थे। परन्तु आज राजनीतिक अखाड़े में अराजकता का बोलबाला है। सहिष्णुता गायब हो गई है। सभी दल जनता में फूट डालकर उन्हें अपने अंतर्गत लामबंद करने का कुचक्र चलाते रहते हैं।

नेतागण राष्ट्रहित को पोषित करने के बजाय प्रादेशिकता तथा अंचल निष्ठा को तरजीह दे रहे हैं जो कि उनकी क्षुद्र मानसिकता का प्रतीक है। मिश्र जी लिखत है--- ''आपने देश के लिए प्राण देने वालों की राजनीति भी देखी है और आज के अवसरजीवी लोगों के राजनीतिक पैंतरे भी देख रहे हैं लोकतांत्रिक देश की राजनीति विरोधी विचार सरणी से चलती ही है। यह बुरा नहीं है, बुरा है राष्ट्रहित को ताक पर रखकर अंचल निष्ठा प्रदेशवाद और व्यक्ति स्वार्थ को तरजीह देना।''[3]

मिश्र जी ने अपने निबंधों के माध्यम से जहाँ एक ओर अपने अंदर के कोमल भावजगत को स्वर दिया है वहीं दूसरी ओर लेखक होने के अपने सामाजिक प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय के राजनीतिक-सामाजिक सरोकारों पर भी बखूबी कमल चलायी है।

कृष्णबिहारी मिश्र के निबंधों की यह खासियत है कि वे गंवई संवेदना की विभिन्न मुद्राओं के साथ एक विशेष सरसता से युक्त हैं। इनमें रंजक, सर्वप्रिय, सर्वजन सुलभ विषयों को अद्‌भुत रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। परिवेश के अनुरूप गंवई-देशज शब्द एवं मुहावरों का सुन्दर समायोजन हुआ है। कहीं कहीं सम्प्रेषण की सुविधा के लिए बौद्धिकता के स्थान पर हल्के विनोदपूर्ण प्रसंगों का सहारा लिया गया है। मिश्र जी के निबंधों की भाषिक विशिष्टता के संबंध में अज्ञेय कहते है-- ''ललित निबंध के लालित्य का एक पहलू वह भी हो सकता है जिसके केन्द्र में स्वयं भाषा होती है। ऐसे ललित निबंध को अच्छे और सही अर्थ में वागविलास भी कहा जा सकता है। श्री कृष्णविहारी मिश्र की भाषा हमेशा कुछ कहने में लगी रहती है क्योंकि उसमें कहने को बहुत कुछ है।''[4]

हम यह कह सकते हैं कि मिश्र जी की भाव प्रवणता, संवेदनशीलता तथा सचेतनता उनके प्रत्येक निबंध का शृंगार करती है। विद्यानिवास मिश्र ने भी कहा है--

''कृष्णबिहारी जी का सपना धुंधला नहीं है, बड़ा ही स्पष्ट है। वे जड़ो की तलाश करते हैं तो जड़ खोदकर नहीं, अपनी प्राणनाड़ी का सन्धान करते हुए करते हैं। इस कारण वे उघरी जड़ों का आह्वान या स्मरण नहीं करते, वे समग्र जातीय चेतना के रसग्राही स्रोत में धँसी हुई जड़ को ध्याते हैं। वे अधूरेपन से उद्विग्न होकर समूचेपन की तस्वीर खींचने के लिए स्वप्नाविष्ट होते हैं।''[5]

संदर्भ सूची

मिश्र डॉ. कृष्णबिहारी, अराजक उल्लास, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2007 पृ.सं.-7

वहीं, पृ.सं.-51

वहीं, पृ.सं.-76

http://www.pustak.org/bs/home.phd?bookid-85(Google)

मिश्र डॉ. कृष्णबिहारी, अराजक उल्लास, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2007
आवरण पृष्ठ से उद्धृत

Society Language Culture